जानकी-स्तवराज

श्रीरामचन्द्राभ्यां नमः।

श्रुतिरुवाच

कीदृशः स्तवराजोऽयं केन प्रोक्तः सुरेश्वर।
कथ्यतां कृपया देव जानकीरूपबोधकः॥१॥

श्रुतियाँ बोलीं— हे देवाधिदेव! जानकी के स्वरूप का बोध करानेवाली यह कैसी स्तुति है? यह स्तुति किसके द्वारा की गयी? यह सब मुझे बतलायें।

संकर्षण उवाच

ब्रवीमि स्तवराजं ते श्रीशिवेन प्रभाषितम्।
श्रुतं श्रीवक्त्रयोर्दिव्यं पावनानां च पावनम्॥२॥

संकर्षण ने कहा— भगवान् शंकर ने जो स्तुति की थी, उसे मैंने पार्वती के मुख से सुनी। यह पवित्रों को भी पवित्र करने वाली स्तुति है। यह मैं तुम्हें सुना रहा हूँ।

चकाराराधनं तस्याः मन्त्रराजेन भक्तितः।
कदाचिच्छ्रीशिवो रूपं ज्ञातुमिच्छुर्हरेः पदम्॥३॥

किसी समय भगवान् शंकर श्रीजानकी के स्वरूप जानने तथा भगवान् विष्णु के परम पद पाने की अभिलाषा से मन्त्रराज से जानकी की आराधना करने लगे।

दिव्यवर्षशतं वेदविधिना विधिवेदिना।
अजापि परमं जाप्यं रहःस्थितेन चेतसा॥४॥

उन्होंने सौ दिव्य वर्षों तक विधानों को जाननेवाले वेदों की विधि से एकान्त में अवस्थित होकर परम-मन्त्र का जप किया।

प्रसन्नोऽभूत्तदा देवः श्रीरामः करुणाकरः।
मन्त्रराजेन रूपेण भजनीयः सतां प्रभुः॥५॥

तब करुणा करनेवाले भगवान् श्रीराम, जो मन्त्रराज के रूप में सज्जनों के आराध्य हैं, वे प्रसन्न हुए।

द्रष्टुमिच्छति यद्रूपं मदीयं भावनास्पदम्।
आह्लादिनीं परां शक्तिं स्तूयाः शास्त्रसंमताम्॥६॥
तदाराध्यस्तदारामस्तदाधीनस्तया विना।
तिष्ठामि न क्षणं शम्भो जीवनं परमं मम॥७॥

श्रीराम ने कहा कि यदि आप मेरे सांसारिक सगुण स्वरूप का दर्शन करना चाहते हैं, तो सुख उत्पन्न करनेवाली, शास्त्रों के द्वारा सम्मत तथा परम शक्ति-स्वरूपा जानकी की स्तुति करें। हे शंकर! मैं उस परम शक्ति का आराध्य हूँ, वह शक्ति मुझमें रमण करती है, मैं उसके वशीभूत हूँ तथा उस शक्ति के विना मैं एक क्षण भी नहीं रहता हूँ। वह मेरा परम जीवन है।

इत्युक्त्वा देवदेवेशो वशीकरणमात्मनः।
पश्यतस्तस्य रूपस्थमन्तर्धानं दधे प्रभुः॥८॥

ऐसा कहकर प्रभु देवेश श्रीराम भगवान् शंकर के देखते देखते आत्मा को वशीकृत करनेवाले रूप में अन्तर्धान हो गये।

श्रुत्वा रूपं तदा शम्भुस्तस्याः श्रीहरिवक्त्रतः।
अचिन्तयत्समाधाय मनःकरणमात्मनः॥९॥

इसके बाद श्रीहरि श्रीराम के मुख से जानकी के स्वरूप का वर्णन सुनकर समाधि लगाकर अपने अन्तःकरण में चिन्तन करने लगे।

अस्फुरत् कृपया तस्य रूपं तस्याः परात्परम्।
दुर्निरीक्ष्यं दुराराध्यं सात्वतां हृदयङ्गमम्॥१०॥
आश्रयं सर्वलोकानां ध्येयं योगविदान्तथा।
आराध्यं मुनिमुख्यानां सेव्यं संयमिनां सताम्॥११॥

श्रीराम की कृपा से जानकी के परात्पर स्वरूप का स्फुरण हुआ। वह रूप कठिनता से दिखाई पड़ता था, कठिनता से आराध्य था तथा उपासकों के द्वारा हृदयङ्गम करने योग्य था। वह स्वरूप सभी लोकों का आश्रय तथा योगियों के द्वारा ध्यान लगाने योग्य तथा श्रेष्ठ मुनियों द्वारा आराधना करने योग्य एवं सज्जन संयमियों द्वारा पूजनीय था।

दृष्ट्वाश्चर्यमयं सर्वं रूपन्तस्याः सुरेश्वरः।
तुष्टाव जानकीं भक्त्या मूर्तिमतीं च भावनाम्॥१२॥

श्रीजानकी के उस आश्चर्यमय स्वरूप को देखकर शंकर भावना की प्रतिमूर्ति जानकी की स्तुति करने लगे।

शिव उवाच

वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं
कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम् ।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं
सन्मानसालिपरिपीतपरागपुञ्जम् ॥१३॥

शिव बोले– विदेह राजा जनक की पुत्री जानकी के उस चरणकमल की वन्दना करता हूँ, जिस नव प्रस्फुटित कमल की सुगन्धि से योगियों का चित्त आकृष्ट हो गया है। वह चरणकमल तीनों तापों को नाश करने में समर्थ है। मुनि रूपी हंसों से वह हमेशा सेवित है तथा सज्जन के मन रूपी भ्रमर इसके पराग समूह का पान करते हैं।

पादस्य यावकरसेन तलं सुरक्तं
सौभाग्यभाजनमिदं हि परं जनानाम्।
पुञ्जीकृतं सुभजतां तव देवि नित्यं
दत्ताश्रयः सुमनसां मनसानुरागः॥१४॥

हे देवि! महावर के रस से रक्तिम आपका जो पादतल है, वह नित्य रूप से भक्त लोगों के लिए एकत्र किया हुआ सौभाग्य प्रदान करनेवाला है और वह देवताओं तथा सज्जनों के मन का अनुराग भी वहाँ अपना आश्रय लेता है।

पादाङ्गुलीनखरुचिस्तव देवि रम्या
योगीन्द्रवृन्दमनसा विशदा विभाव्या।

त्रैतापशान्त्युपशमाय शशांककान्ति-
दोषेण किं समुपयाति तुलां युता सा॥१५॥

आपके पैरों की अंगुलियों के नख की शोभा रमणीय है, जिसे श्रेष्ठ योगिगण अपने विस्तारित मन से ही जान पाते हैं। इस संसार के तीनों प्रकार के तापों की शान्ति के लिए वह चन्द्रमा की कान्ति के समान है। (चन्द्रमा की कान्ति को यदि दोषपूर्ण मानें फिर भी) उस दोष से युक्त होने पर क्या वह तुला राशि पर आरूढ़ हो सकता है?

नित्यं भजन्ति जनता जगतां जनन्याः
पादारविन्दमकरन्दमिहोपहारैः ।
विन्देत साधनशतैः परमे तदेव
तासां सदासवमनोऽनिशयोगिसाध्यम्॥१६॥

हे परमशक्ति-स्वरूपे! नित्य रूप से जन समूह उपहारों के द्वारा संसार की माता आपके चरणकमल से निःसृत अमृत की आराधना करते हैं। वे सैकड़ो साधनों से उसी मकरन्द को प्राप्त करते हैं, किन्तु उनमें से जो हमेशा उस मादक रस में चित्त लगाये रहते हैं, वे निरन्तर योगाभ्यास से साध्य रस को प्राप्त करते हैं।

कुर्वन्ति विष्णुहरवारिजभूपमुख्याः
ज्ञातुं रहस्यमिति मानुषदेहधर्त्तुः।
कान्तस्य ते चरणपंकजयुग्मसेवां
मातर्नमोऽमरमुनीडितपादपीठे ॥17॥

हे मातः ! विष्णु, शंकर एवं ब्रह्मा आदि जो पृथ्वी का पालन करनेवाले देव हैं, वे सभी मनुष्य रूप धारण वाले आपके पति श्रीराम की सेवा आपके रहस्य को जानने के लिए करते हैं। आपके चरणपीठ की वन्दना देवता और मुनिगण करते हैं, ऐसी माता को प्रणाम करता हूँ।

मञ्जीरधीरनिनदं कलहंसकेली
हास्यायसा भवति भावयतां त्वदीयम्।
किञ्चापरं रसिकमौलिमनोनिहर्त्तुं
दृष्टं मया परमकौशलमत्र तस्याः॥१८॥

मंजीरा के गम्भीर स्वर से निनादित तथा सुन्दर हंस की क्रीडाओं तथा विलास से शोभित आपका एक चरण भक्ति की भावना करनेवालों के लिए है तो दूसरा चरण रसिकों में श्रेष्ठ जनों के मन को हरण करने के लिए है। मैंने उस परम शक्ति की यह श्रेष्ठ कुशलता देख ली है।।18।।

सिद्धेशबुद्धिवररंजितगूढगुल्फौ
पादारविन्दयुगलौ जनतापवर्गौ।
विन्दन्ति ते त्रिभुवनेश्वरि भावसिद्धिं
ध्यायन्ति ये निखिलसौभगभागभाजौ॥१९॥

हे त्रिभुवन की देवि! सिद्धों, देवताओं और बुद्धिमान् जनों के झुकने के कारण प्रतिबिम्ब से आपकी दोनों सघन पिंडलियाँ रक्तिम हो गयीं हैं। वे दोनों चरणकमल जनसमूह को मोक्ष देने के लिए ही तो है! जो ऐसे समस्त सौभाग्य के आधार उन दोनों चरणकमलों का ध्यान करते हैं, वे भक्ति की सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।।19।।

हेमाभिवन्दितविभूषणभूषितन्ते
त्रैलोक्यतेज इव मञ्जुलपुञ्जभूतम्।
भाति स्म सुन्दरि पदं सरसीरुहाभं
भीताभयप्रदमनन्तमनोऽलिधाम ॥२०॥

हे सुन्दरी सीते! स्वर्ण भी जिस पदार्थ की वन्दना करे, उससे निर्मित भूषणों से आपका पद आभूषित है। वह कमल के समान इस प्रकार शोभित हो रहा है, जैसे तीनों लोकों का तेज सुन्दर रूप में एकत्र हो गया हो। वह पद भयभीतों को अभय प्रदान करनेवाला और अनन्त मन रूपी भ्रमर का स्थान है।।20।।

चक्राभहारि सुनितम्बयुगं भवत्या
ध्येयं सुधीभिरभितोरसनाभिषिक्तम्।
ध्यानास्पदं रघुपतेर्मनसो मुनीनां
भावैकगम्यममरेशनताङ्घ्रिपद्मे ॥२१॥

हे सीते! देवताओं के स्वामी भी आपके चरणकमलों में झुके हुए हैं। आपके चक्र की कान्ति को भी जीत लेनेवाले तथा ज्ञानियों के ध्येय आपके दोनों नितम्ब हैं, जो चारों ओर से कमरधनी से घिरे हुए हैं। यह रघुपति तथा मुनियों का मन इसका ध्यान करते हैं। यह केवल भाव के द्वारा जाने जा सकते हैं।

कौशेयवस्त्रपरिणद्धमल तं ते
कार्त्तस्वराशनिमणिप्रसरप्रवेकैः ।
रत्नोत्तमैः रसनया ग्रहकान्तिमद्भि-
र्भास्वन्तमारचितया स्वधियन्ति मध्यम्॥२१॥

हे मातः आपके शरीर का मध्य भाग पहने गये रेशमी वस्त्र से अलंकृत है तथा ग्रहों के समान चमकते हुए, सुवर्ण, विद्युत् और मणि समूह से भी विशिष्ट उत्तम रत्नों से शोभित है तथा इस पर करधनी लगी हुई है।

अश्वत्थपत्रनिभमम्ब धियोदरन्ते
भाव्यं भवाब्धितरिकेवलकालनाशे।
भूयोऽनभावि जननीजठरे निवास-
स्तेषां मनो धरणिजेऽत्र सुलग्नमासीत्॥२२॥

हे धरती की पुत्री, सीते! हे मातः! आपके उदर जैसे पीपल के पत्र के समान है। वह काल के अन्त में संसार रूपी समुद्र को पार लगाने के लिए एकमात्र नौका है। जिसका मन इसमें लग गया है, उसे पुनः माता के जठर में रहना नहीं होता है।

नाभीह्रदं हरविरञ्चिमनःकृशांशो-
सृष्टिप्रदं प्रचलितं त्रिवलीतरङ्गम्।
राजीसु शैवलनिभं अभिभूतरोम्णां
शान्त्यै तवाम्ब जगतामतिभावयामः॥२३॥

आपकी नाभि रूपी ह्रद, शंकर, ब्रह्मा, मन एवं नवीन चन्द्रमा को उत्पन्न करनेवाला है। इस ह्रद में कमल की पंक्तियों के बीच शैवाल के समान आपकी त्रिवली का तरंग चंचल हो रहा है। हे माता! इस संसार

में जिनका रोम भी कष्ट में हो अर्थात् अल्प कष्टवालों की भी शान्ति के लिए आपका यह नाभि रूपी ह्रद है, ऐसी कल्पना मैं कर रहा हूँ।

नीलाभ्रकञ्चुकमणीन्द्रसमूहनिष्कै-
र्वक्षोजयुग्ममतितुङ्गमल तं ते।
हारैर्मनोहरतरैस्तरुणि क्षितीशे
सौन्दर्यवारिनिधिवारितरङ्गमङ्गम्॥२४॥

हे तरुण वय वाली! पृथ्वी की स्वामिनी! नीले मेघ के समान कंचुक एवं श्रेष्ठ मणियों के समूह वाले अत्यन्त मनोहर कण्ठहारों से आपके अति उत्तुंग एवं सौन्दर्य रूपी समुद्र के जल से तरंगायमान दोनों स्तन अलंकृत हैं।

बाहू मृणालमदखण्डनपण्डितौ ते
भीताभयप्रदवदान्यतमौ जनानाम्।
रुक्माङ्गदाङ्कितविटङ्कितमुद्रिकौ ते
हैरण्यकङ्कणधृतावलयौ भजामः॥२५॥

आपकी दोनों बाहें कमलनाल के घमण्ड को चूर करने में निपुण हैं। वे बाहें भयभीत जनों को अभय प्रदान करने में भी श्रेष्ठ हैं। स्वर्णनिर्मित बाजूबंद से विलसित तथा अंगूठी से मुद्रित दोनों बाहें, जिनमें स्वर्णनिर्मित कंगन और वलय हैं, उन्हें मैं भजता हूँ।

कण्ठं कपोततरुणीगलकान्तिमोषं
भूषैरनेकविधभूषितमम्ब तुभ्यम्।
ध्यायेम मानसविशुद्धिकृते कृपालो
योगेशभावितपदं शमदं शरण्यम्॥२६॥

हे मातः ! हे कृपा करनेवाली! अनेक भूषणों से भूषित आपका कण्ठ तो तरुणी कबूतरी के गले की कान्ति चुरानेवाला है। मन को विशुद्ध करनेवाली तुम्हें प्रणाम। हमलोग योगेश शिव के द्वारा आराधित, शान्ति देनेवाले, तथा शरण देनेवाले आपके पद का ध्यान करते हैं।

वक्त्रेन्दुमिन्दुचयखण्डितमण्डितांशं
खण्डाशपण्डितमनःपरदण्डिताशम्।
मन्मानसाब्जमुदितं गतिदं वरेण्यं
रामाक्षितारकचकोरमहं भजेम॥२७॥

हे सीते! चन्द्रमा के समान आपका मुख चन्द्रमा के समूह की कान्ति के एक अंश से मण्डित अवयवों से युक्त है, जो निराशा से ग्रस्त विद्वानों के मन के लिए आशा जगानेवाला दूसरा लाठी का सहारा है। वह मुख मेरे मन रूपी कमल को प्रफुल्लित करनेवाला है। वह गति देनेवाला, श्रेष्ठ तथा श्रीराम की आँख रूपी तारा को निहारनेवाला चकोर पक्षी है। इस मुख को मैं भजता हूँ।

ताम्बूलरागपरिरङ्गश्रभतदन्तपंक्तिं
प्रद्योतिताधरमधुःकृतबिम्बबिम्बम्।
ईषत्स्मितं द्युतिकटाक्षविकाशिताशं
वक्त्रं परेशनयनास्पदमहं निरीक्ष्ये॥२८॥

हे सीते! ताम्बूल के रंग से रँगी हुई आपकी दन्तपंक्ति पर चमकते हुए अधरों के रस प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। हल्की मुसकुराहट वाली वह दन्तपंक्ति अपनी आभा के थोड़े से बाँकपन से दिशाओं को विकसित कर रही है। ऐसी दन्तपंक्ति से युक्त आपके उस मुख का मैं दर्शन कर रहा हूँ, जो परम प्रभु श्रीराम की दृष्टि का निवास स्थान है।

सेवन्ति सादरमहर्निशमासमन्ता-
द्रैरञ्च्यभोगभुवनानि रहस्यमस्याः।
पादारविन्दयुगलं नु नमन्ति तेषां
ये वै हरेन्द्रजनुषा सफलं भवेत्किम्॥२३॥

ब्रह्मा के जो भी भोग भुवन हैं, वे श्रीसीता के रहस्य को जानने के लिए आदरपूर्वक दिनरात हर प्रकार से उनकी सेवा करते हैं। वे उनके दोनों चरणकमलों का नमन भगवान् शंकर के राजा श्रीरामचन्द्र की सृष्टि के माध्यम से करते हैं, तो भला वे क्या सफल हो पायेंगे?

नासाग्रमौक्तिकफलं फलदं परेशे
ध्यायन्ति ते जननि जाड्यविनाशहेतोः।
त्रैलोक्यनिर्मलपदं सुखदं त्वदीयं
स्वेच्छाभिकांक्षितमिदं बहुशो रसज्ञाः॥३०॥

हे पराशक्ति-स्वरूपिणि देवि! आपके नाक के अगले भाग पर जो मोती का दाना है, संसार के लोग उस फल देनेवाले का ध्यान जड़ता के नाश के लिए करते हैं। भक्तिरस के अनेक रसिक तीनों लोकों में निर्मल आपका सुखद एवं अपनी इच्छा से अभीष्ट जो परम धाम है, उसका ध्यान करते हैं।

ज्ञानं निरञ्जनमिदं विवदन्ति के ये
मुह्यन्ति सूरिनिबहास्तरुणीकटाक्षैः।
नालोकयन्ति नितरां तव देवि ताव-
द्दीर्घायताक्षयुगमञ्जनरञ्जितं ते॥३१॥

ज्ञान को निरंजन अर्थात् विना काजल वाला कहते हुए वे ही ज्ञानीगण विवाद करते हैं, जो तरुणियों के कटाक्ष से मोहित हो जाते हैं। हे देवि! वे बिल्कुल आपकी उन दोनों बड़ी बड़ी आँखों को नहीं देखते हैं, जिनपर काजल लगे हुए हैं।

भ्रूवल्लरीविलसितं जगदाहुरीशे
व्यासादयो मुनिवरास्तु त एव नित्यम्।
नाशाय तस्य तरुणीतिलके त्वदीया
पाशीकृता हरिमनोमृगबन्धनाय॥३२॥

हे स्वामिनि! आपके भौंह रूपी लता से विलसित यह संसार है, ऐसा व्यास आदि श्रेष्ठमुनियों ने कहा है, अतः वे संसार को नित्य मानते हैं। उस संसार के नाश अर्थात् पुनर्जन्म के नाश के लिए तरुणियों के करने योग्य आपका जो तिलक है उसमें हरि श्रीराम के मन रूपी हिरन को बाँध देने के लिए यह लता जैसे रस्सी बन गयी है।

भालं विशालमतिसौभगभाजनन्ते
सिन्दूरविन्दुरुचिरद्युतिदीप्तिमन्तम्।

पिण्डीकृतं किमुत राग इहैव तस्मिन्

प्रद्योतिते जननिजागतजन्मभाजाम्॥३३॥

हे सनातनि सीते! आपका यह विशाल भाल अत्यन्त सौभाग्यशाली है, जो सिन्दूर के बिन्दु से सुन्दर तथा दीप्तिमान् हो रहा है। क्या यहीं वह स्थान है, जहाँ जिसके द्योतित हो जाने पर माता के गर्भ से जन्म लेनेवाले सांसारिकों का अनुराग पुंजीभूत हो जाता है?

आदर्शवर्त्तुलकपोलविलोललोलं

कर्णावतंसयुगलं जनजाड्यनाशम्।

सूर्यादिकान्तिहरमाश्रयमोजसान्ते

तीव्रं धिया धरणिजे स्वधियन्ति धीराः॥३४॥

हे पृथ्वी की पुत्रि! सीते! दर्पण के समान गोल आपके चंचल गालों से हिलाये जाते हुए आपके दोनों कर्णाभूषण लोगों की जडता का नाश करनेवाले हैं। वे कर्णाभूषण सूर्य आदि की भी कान्ति को हरनेवाले हैं और ओज के आश्रय हैं। समझदार लोग उसे अपनी बुद्धि से तीव्र गति से जान लेते हैं।

कालो बिभेति जगतामतिभक्षकस्ते

जीवान्तको भवदृशामगुणायतोऽसौ।

सर्वातिवल्लभतया भजनीयरूपं

मन्यामहे हरिरिति श्रुतिभूषसारम्॥३५॥

जीवों का नाश करनेवाला तथा संसार का भक्षण करनेवाला जो काल है वह संसार का विवेचन करनेवाले विद्वानों के मत से गुणहीन है। वह काल भी आपसे डरता है। सबसे प्रिय होने के कारण भजनीय स्वरूप में केवल हरि श्रीराम हैं, ऐसा कथन वेदों की तरह आपके दोनों कानों के आभूषणों का भी सार तत्त्व है।

नाशाय भामिनि भवाब्धगतेस्त्वदीयं

ध्यायन्ति धीरनिकरा नितरां गतिं ते।

मत्तेभगामिनि रहो निलयं विधाय

प्रद्योतते हृदि कदापि यदा मदीये॥३६॥

हे मदमत्त हस्तिशावक के समान गति वाली सीते! संसार रूपी सागर की गति के विनाश के लिए समझदार लोग आपकी इस गति का ध्यान एकान्त में आवास बनाकर करते हैं। आपकी वह गति मेरे मेरे हृदय में भी कभी कभार कौंध जाती है।

मत्तेभमन्दगतिरासविलासहास्ये

हस्तप्रदो मलनमिषादमुमूक वीक्ष्य।

मोचाश्रुशोचनभयादजजन्म यस्मात्

कम्पन्ति भर्त्तिकपितामवलोक्य यस्याः॥३७॥

(दूसरा पाठ अनुपलब्ध होने के कारण पाठोद्धार के अभाव में अर्थ अस्पष्ट प्रतीत हो रहा है। सं.)

सीमन्तमम्ब तव सुन्दरतानिसीमं

मुक्ताविभूषितमलं समभागभाजम्।

निःसीमतापदकृते यतयो यजन्ति

जानीमहे महितवन्दितसीममूर्त्ते॥३८॥

हे अम्ब! आपका निर्मल सीमन्त जो समान भागों में विभक्त है तथा मोती से विभूषित है, वह सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। आपका का यह सीमन्त महिमामण्डित एवं वन्दित है, अतः यतिगण जो निःसीम मोक्ष के लिये यत्न करते हैं, वहाँ मैं मानता हूँ कि वे आपके सीमन्त के लिए ही यत्न करते हैं!

कालाद्विभीतिर्भजतां न हि भोगभिन्ना
पायात्परेश्वरि सतामवती सदा नः।
एणीदृशस्तव विशालतरा तु वेणी
सन्दर्भभागसदृशा सुदृशस्त्रिलोक्याम्॥३९॥

हे परेश्वरि! जो आपका भजन करते हैं, उन्हें काल का भय नहीं रह जाता है, क्योंकि आप भोगों से परे हैं तथा सज्जनों की रक्षा करती हैं। आप सदा हमारी रक्षा करें। हिरणी के समान सुन्दर आँखों वाली आपकी विशाल वेणी अद्वैत के विभाजन अर्थात् द्वैत के समान इस संसार में प्रतीत हो रही है।

शाटी सुसूक्ष्मनितरातिगतातिनीला
सौवर्णसूत्रकलिता कृपया धृता ते।
भर्त्तुस्वरूपमनुभावयता जनानां
प्रीत्यै करोषि तदिहापि पदाभिधानम्॥४०॥

हे सीते! आपकी साड़ी अत्यन्त सूक्ष्म है, अत्यन्त चंचल है तथा नीले रंग की है। उस साड़ी पर सुवर्ण के धागे से कशीदागिरी भी की गई है और उसे आपने अपने पति श्रीराम के नीले स्वरूप की अनुकृति करती हुई कृपापूर्वक धारण की है। यह सबकुछ आपने भक्तजनों की प्रीति के लिए किया है, तब यहाँ मेरे पास भी आप कृपापूर्वक अपने चरण रखें।

वारे गिरां गुणनिधे श्रुतयो वदन्ति
रूपन्त्वदीयमपरं मनसाप्यगम्यम्।
साक्षात्कथं सरसिजाक्षि भवेदृते ते
बुद्धौ कृपां तनुकृशोदरि मादृशं तत्॥४१॥

हे वारे! हे शब्दों के गुणों की निधि! वेद कहते हैं कि आपका विशिष्ट स्वरूप मन के द्वारा भी अगम्य है। हे कमल के समान आँखों वाली! हे तनुकृशोदरि! तब इस संसार में आपका साक्षात्कार मेरी बुद्धि में मेरे जैसे लोगों के लिए आपकी कृपा के विना कैसे होगा?

किञ्चित्रमत्र जननि प्रभया प्रकाश्यं
विश्वं वदन्ति मुनयस्तव देवि देवाः।
जातस्त्रयस्त्रिभुवनैर्गुणतोऽभिबन्द्या
स्त्राणादिकर्मविभवः परमस्य यस्याः॥४२॥

हे माँ! यह क्या विचित्र बात है कि तीनों देव ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तथा तीनों भुवनों के गुणों-सत्त्व रजस् एवं तमस् से युक्त होने के कारण वन्दित देवतागण तथा अन्य मुनिगण इस संसार को आपकी ज्योति से प्रकाशित मानते हैं, किन्तु परम देव श्रीराम में रक्षा आदि करने की जो शक्ति है, वह तो आपकी ही है।

वेदास्तवाम्ब विवदन्ति निजस्वरूपं
नित्यानुभूतिभवभावपरापरेशे।

निर्णेतुमद्य यतयस्तपसा यतन्ते
बोधाय पादसरसीरुहयुग्मभृंगा॥४३॥

हे अम्ब! हे स्वामिनि! आप नित्य अनुभूति स्वरूप हैं या आपका सांसारिक स्वरूप है, आप परा हैं या अपरा हैं, आपके स्वरूप के विषय में सभी वेद विवाद करते रहते हैं। आज आपके दोनों चरण-कमल पर लुब्ध भ्रमर के रूप में यतिगण इसके ज्ञान के लिए तथा निर्णय करने के लिए तपस्या के द्वारा यत्न करते हैं।

कुर्वन्ति संयममहो किमुतास्ति नास्ति
प्रायेण वाल्मिकमुखाः कविराजराजाः।
आलोक्यते कटिमनोरपि सूक्ष्मभाज-
भावं मलोलगत नासति भावशक्तिः॥४४॥

वाल्मीकि आदि जो कविसम्राट् हैं, वे प्रायः यही दृढ़ निश्चय करने में लगे रहे कि आपका स्वरूप सांसारिक है या अलौकिक है! (इसके बाद का पाठ अस्पष्ट है। – सं.)

जातन्त्वदेव जगतां नितरां निधानं
मत्वा महीं तदिदमम्ब श्रुतं श्रुतीनाम्।
सर्वं यतः खलु विचेष्टितमाद्यशक्तेः
कार्ये हि कारणगुणानवलम्ब्य विन्द्यात्॥४५॥

हे सीते! आपसे ही तो सभी लोकों के आश्रय भली भाँति उत्पन्न हुए हैं। तब इस पृथ्वी को भी वहीं आश्रय मानकर वेदों का तात्पर्य है कि चूँकि संसार के सबकुछ आदिशक्ति के द्वारा कार्य किए गये हैं; अतः कार्य में कारण के गुण आ ही जाते हैं।

जानीमहे जननि ते नयनारविन्द
उन्मीलिते जनजगत्क्षयकृन्निमीले।
वैषम्यशून्यसमतां समुपागते किं
स्यादेव पालनमशंसयमस्य नूनम्॥४६॥

हे मातः! हम सब जानते हैं कि आपके नयन-कमल जब खुलते हैं तब लोगों की उत्पत्ति होती है और आँखें ही बंद होने पर संहार करती हैं। तब क्या इन विषमताओं उन्मीलन और निमीलन से रहित स्थिति में समता उत्पन्न होने पर निःसन्देह इसका पालन होता है।

ज्ञानं त्वदीयमपरं चरितं विशाल-
माबन्धवे ननु निजे प्रकटीकरोषि।
प्रेम्णैव तैः प्रथमतः परमाणभावं
भाव्यं पदाब्जमनिशं स्वजनैरतस्ते॥४७॥

हे देवि! आपका ज्ञान अतुलनीय है, चरित विशाल है आप अपना ज्ञान और चरित के अपने बन्धुओं के लिए केवल प्रेम से ही प्रकट करती हैं। अतः इन स्वजनों को सबसे पहले आपके चरण कमलों में निरन्तर परम जीवन (प्राण) की भावना करनी चाहिए।

येषामयं परमवस्तुतया जनानां
विन्दन्ति ते जनकजे चरणारविन्दम्।

सर्वं समक्षमिह कर्ममनोवचोभि-
ब्रह्मस्वरूपमतिदुर्ल्लभतानुसेव्या॥४८॥

जिन लोगों में परम वस्तु के रूप में ऐसा भाव है, वे आपके चरण-कमलों को प्राप्त करते हैं। उन्हें ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है तथा इस संसार में कर्म, मन तथा ज्ञान से अतिदुर्ल्लभ वस्तुएँ भी प्राप्त हो जाती है।

किं दुर्ल्लभं चरणपङ्कजसेवया ते
पूर्णारमन्ति रमणीयतया त्रिलोक्याम्।
वस्तुप्रकाशनिबहं हृदयं त्वदीयं
तेषामहो किमुत साधनकोटियत्नैः॥४९॥

हे देवि! आपके चरण-कमल की सेवा करने से कौन सी वस्तु दुर्ल्लभ है? वे पूर्ण होकर तीनों लोकों में रमणीय होकर विचरण करने लगते हैं। हे सीते! तत्त्व और प्रकाश का स्थान तो आपका हृदय है। उस हृदय के सेवकों के लिए अन्य करोड़ों साधनों से प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता होगी?

धन्यास्त एव तव देवि पदारविन्दे
स्पन्दायमानमकरन्दमहर्निशं ये।
भृङ्गायमानमनसो नितरां भजन्ते
भाववबोधनिपुणा परदेवतायाः॥५०॥

हे देवि! आप परदेवता हैं। आपके चरण-कमलों में हिलते हुए पराग-कणों पर भ्रमर के समान दत्तचित्त होकर जो भाव और ज्ञान में कुशल होकर उसकी सेवा करते हैं, वे ही धन्य हैं।

पादाब्जरागपरिरञ्जितचित्रभृङ्गो
येषां समक्षमिह जातमिदं स्वरूपम्।
तेषां न किं प्रवद ते परितोऽवशिष्टं
साध्यं भवेदिह परत्र न किञ्चिदन्यत्॥५१॥

हे देवि! आपके चरण-कमल के पराग से रँगे हुए जिनके हृदय रूपी भ्रमर हैं, ऐसे भक्तों के समक्ष आपका यह स्वरूप प्रकट हुआ है, उन्हें क्या नहीं मिल गया? यह कहो कि उनके चारों ओर इस संसार में तथा परलोक में भी प्राप्य वस्तु इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहा।

चुम्बन्ति चिद्वनमहो मकरन्दमस्य
देवैर्मुनीन्द्रनिबहैरति दुर्ल्लभन्ते।
पादाब्जयोरतिविकासविलासबोधः
स्यादेव देवि तव कान्तनिजस्वरूपे॥५२॥

ये भक्त आपके चरण-कमल के उस पराग-वन का चुम्बन करते हैं, जो देवताओं और श्रेष्ठ मुनियों के समूह के लिए भी दुर्ल्लभ है। हे देवि! आपके सुन्दर स्वरूप में चरण-कमलों के विकास और विलास का बोध तो है ही!

यावन्न ते सरसिजद्युतिहारिपादे
न स्याद्रतिस्तरुणबाङ्कुर खण्डिताशे।

तावत्कथं तरुणिमौलिमणौ जनानां
ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे॥५३॥

हे देवि! हे रामस्वरूपे! सुन्दरि! जिस संसार में युवाओं के बाँकपन से मोक्ष की आशा खण्डित हो गयी है, उस संसार में जबतक कमल की शोभा को जीतनेवाले आपके चरणों में अनुराग नहीं होगा, तबतक तरुणियों की शिरोमणिस्वरूपा आपके स्वरूप का दृढ़ ज्ञान कैसे होगा?

कर्पूरपूरितदलोदरपाण्डुपक्वां
पूगीफलेन खदिरां सुधया विशुद्धाम्।
वीटी कदा परिविधाय सुनागवली
दास्यामि देवि वदने परमे त्वदीये॥५४॥

हे देवि! कर्पूर से भरे हुए, पीले, पके, सुपारी से युक्त, कत्था और चूना से शोधित पान का बीड़ा लगाकर आपके परम मुख में मैं कब डाल पाऊँगा?

साक्षात्तपोव्रतयमैर्नियमैस्समीहेत्
कर्त्तुं कृपामृत इह प्रशमं स्वरूपम्।
नाथस्य ते श्रुतिवचो विषयं कथं स्यान्मूढो
वृथोत्सृजति देवि मुखान्यमूनि॥५५॥

हे देवि! तप, व्रत, यम नियम आदि से आपके पति श्रीराम के वेदोक्त स्वरूप का साक्षात्कार करने के लिए आपकी कृपारूपी अमृत के रहने पर ही लोग इच्छा कर पाते हैं। पर जो मूर्ख हैं, वे व्यर्थ क्यों आपके इन मुखों का त्याग करते हैं? (उन्हें तो आपको पाने की चेष्टा करनी चाहिए।)

योगाधिरूढमुनयो हरिपादपद्मे
ध्यायन्ति ते चरणपंकजयुग्ममन्तः॥
वाञ्छन्ति विघ्नशतशोप्यऽनिवार्य्यमाणां
भक्तिं भवाब्धितरणीयकृपापयोधेः॥५६॥

योगाभ्यास में लीन मुनिगण हरि श्रीराम के चरण-कमल में आपके दोनों चरणकमलों को अन्तःस्थित मानकर ध्यान करते हैं। वे सैकड़ों विघ्नों के द्वारा भी जिसे बाधित न किया जा सके, ऐसी भक्ति चाहते हैं, जो भक्ति संसार रूपी समुद्र को पार करानेवाली आपकी कृपा रूपी समुद्र से उत्पन्न होती है।

चार्वङ्गि ते चरणचारणवन्दिसङ्गं
मह्यं विदेहतनये परिदेहि नान्यम्।
याचे वरं वरविदां वरदे भवन्त्या
येनामुना तव धवे मम रञ्जनं स्यात्॥५७॥

हे सुन्दर अंगों वाली! आपके चरणों के चारण और वन्दी जन जो हैं, उनकी संगति मुझे दें। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। दे देवि! उत्तम ज्ञान वालों को वर प्रदान करने वाली! आपसे ऐसे वर की याचना करता हूँ जिससे आपके पति श्री राम में मेरा अनुराग उत्पन्न हो।

मीनालिहारिणिसरोजविखञ्जरीटाः
खञ्जीकृतास्तरलकोणकटाक्षमोक्षैः।

किं भावयन्ति रसिका जगतीतले ये
चाञ्चल्यमेति पुनरङ्गमनो न येषाम्॥५८॥

मत्स्य, भ्रमर, हरिण शावक, कमल और खञ्जन ये सबके सब आपकी चंचल आँखों के कटाक्ष के समक्ष फीके पड़ गये (लँगड़े हो गये) क्या इस संसार में रसिक गण उन्हीं की कल्पना करते हैं जिनके अंग तो चंचल हैं किन्तु श्वास चंचल नहीं रहते।

याचेऽहमम्ब मधुसूदनमूर्तिभावं
सार्द्धन्त्वयातिदृढमञ्जलिना विशेषम्।
त्वां देव देवि वरदे मुनि संघमुख्याः
मन्यन्ति वल्लभतरां स्वपतेर्भवन्तीम्॥५९॥

हे अम्ब! मैं हाथ जोड़कर आपके साथ दृढ रूप से स्थित मधुसूदन श्रीराम की मूर्ति की अनुभूति होने की विशेष याचना करता हूँ। हे देवों की देवी! श्रेष्ठ मुनिगण आपको अपने पति श्री राम की सबसे प्रिया मानते हैं।

संकर्षण उवाच
एवं श्रुत्वा परं रूपं जानक्या जाड्यनाशनम्।
उपरराम प्रशान्तात्मा ईश्वरः स सदाशिवः॥६०॥
निरीक्ष्य त्वन्मुखम्भोजं भावयन् रूपमद्भुतम्॥
कांक्षन् तस्याः परां भक्तिं पादपंकजयोर्दृढाम्।।६१॥

संकर्षण बोले— इस प्रकार जडता का नाश करनेवाले जानकी के स्वरूप को सुनकर तथा आपके मुखकमल को देखकर अद्भुत रूप के अनुभव करते हुए श्रीसीताजी के चरणकमलों में परम दृढ भक्ति की अभिलाषा करते हुए सदाशिव भगवान् शंकर ने विराम लिया।

उवाच तं वरारोहा जानकी भक्तवत्सला।
एवमस्तु महादेव यस्त्वयोक्तं च नान्यथा॥ ६२॥
अन्यत्तु कांक्षितं ब्रूहि दास्यामि देवदुर्लभम्।
सत्यामपि कृपोन्मुख्यां तस्यां किं च दुर्लभम्॥६३॥

इस पर भक्तवत्सला जानकी बोली कि हे महादेव! ऐसा ही हो। इसमें विचलन नहीं इसके अतिरिक्त भी यदि कुछ इच्छा हो तो कहो, मैं वह दूँगी, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। श्री सीताजी जब कृपा करने के लिए उन्मुख हों तो कुछ भी दुर्ल्लभ नही रह जाता है।

प्रसन्नवदनां दृष्ट्वा सोऽपि देवशिरोमणिः।
ययाचे वरमात्मानं रहस्यं भावबोधकम्॥६४॥

देवों के शिरोमणि महादेव ने भी श्रीसीता को प्रसन्न देखकर श्रीसीता के स्वरूप का बोध करानेवाले रहस्य के ज्ञान की याचना की।

प्रादात्तस्मै वदान्या सा यद्यन्मनसि कांक्षितम्॥
वरं वरेश्वरी साक्षात्पुनरुवाच सा हितम्॥६५॥

दानशीला श्रीसीता ने भी प्रत्यक्ष होकर महादेव के मन में जो-जो इच्छा थी, उसका वर दिया और पुनः कल्याणमयी वाणी बोली।

अयं पवित्रमौलिर्मे स्तवराजस्त्वया शिव।
प्रकाशितोऽतिगोप्योऽपि मत्प्रसादात् सुरोत्तम॥६६॥

हे शिव! सुरोत्तम! यह मेरा स्तवराज जो पवित्रों स्तवों में प्रधान है, मेरी कृपा से आपके द्वारा इसका संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार किया जाये।

यः पठेदिममग्रे मे पूजाकाले प्रयत्नतः।
तस्येहामुत्र किञ्चिन्न वस्तु स्याद् दृगगोचरम्॥६७॥

जो इस स्तवराज को पूजा के समय मेरे आगे यत्नपूर्वक पढ़ता है उसके लिए इस संसार में और परलोक में कोई वस्तु अलभ्य नहीं रहेगा।

धनं धान्यं यशः पुत्रानैश्वर्य्यमतिमानुषम्।
प्राप्येऽह मोदते भूयो नाशेमत्पदतां व्रजेत्॥६८॥

धन, धान्य, यश, पुत्र-पौत्र, ऐश्वर्य, श्रेष्ठ मानवता पाकर वह पुनः पुनः प्रसन्नता प्राप्त करता है और मृत्यु के उपरान्त मेरा धाम पाता है।

यद्यल्लोकान्तरं वस्तु त्रिषु लोकेषु दृश्यते।
सर्वं तदस्यपाठेन प्राप्नुयाद् भुवि मानवः॥६९॥

जो जो वस्तुएँ तीनों लोकों में दिखाई पड़ते हैं, वे सब मनुष्य इस संसार में इस स्त्रोत्र के पाठ से प्राप्त कर लेते हैं।

इदं मे परमैकान्तं रहस्यं सुरसत्तम।
न प्रकाश्यं त्वया शम्भो पाठाय भावद्वेषिणे॥७०॥

हे सुरसत्तम! यह मेरा परम नित्य रहस्यमय स्वरूप है।जो भक्तिभाव से द्वेष करते हों, उनके समक्ष पाठ के लिए इसे प्रकाशित न करें।

भक्तिर्यस्यास्ति देवेशे सदैश्वर्ये तथा मयि।
गुरौ सर्वात्मभावेन विद्यते भक्तिरुत्तमा॥७१॥
तस्मै देयं सते शम्भो भावानार्हहृतहरौ।
सर्वभूतहितेच्छाय शान्ताय सौम्यमूर्तये॥७२॥

हे महादेव! सदा ऐश्वर्यवान् देवेश श्रीराम तथा मेरे प्रति जिनकी भक्ति हो, हर तरह से गुरु के प्रति उत्तम भक्ति हो ऐसे सज्जन, शान्त, सौम्य मूर्ति तथा सभी प्राणियों के कल्याण की इच्छा रखने वालों को यह स्तोत्र देना चाहिए।

इत्युक्त्वा भावनामूर्तिः सीता जनकनन्दिनी।
कृपापात्राय तस्मै संप्रादाद्वरान्तरं पुनः॥७३॥

यह कहकर भावमयी श्रीसीता जनकनन्दिनी ने कृपा के अधिकारी भगवान् शंकर को अन्य वर भी प्रदान किया।

इति जानकीस्तवराजः समाप्तः

***